



## कैवल्य का स्वरूप (योगदर्शन के सन्दर्भ में)

अजित कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

### सारांश

द्रष्टा एवं दृश्य का संयोग ही दुख का कारण है<sup>1</sup> तथा इस संयोग का कारण है— अविद्या।<sup>2</sup> क्योंकि अविद्या अनादिकालीन है। अतएव यह संयोग भी अनादिकाल से ही चला आ रहा है। इस संयोग के परिणामस्वरूप ही प्रकृति एवं पुरुष भ्रान्त होकर अपने स्वरूप को भुला बैठे हैं। अतः समस्त दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति हेतु इस अविद्या निमित्तक संयोग को हटाना परमावश्यक है। इस अविद्या का नाश हो जाने पर जो बुद्धिसत्त्व एवं पुरुष के संयोग का अभाव होता है, वही मोक्ष कहा जाता है। वाचस्पति मिश्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि दुःख की निवृत्ति ही पुरुषार्थ है। भाष्यकार व्यास द्वारा जो आत्यन्तिक विशेषण दिया गया है उसका उद्देश्य प्रलयकालीन वियोग से इसका वैशिष्ट्य दिखाना है, ऐसा विज्ञानभिक्षु का मत है।

### मूल शब्द: कैवल्य, स्वरूप

### प्रस्तावना

अविद्या का नाश एवं कैवल्य की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है— विवेकख्याति।<sup>1</sup> जब साधक का चित्त रज एवं तमोगुण रूप मल से रहित हो जाता है अर्थात् मात्र सत्त्वगुण का उद्रेक ही उसके चित्त में निरन्तर होता रहता है, तब चित्त का वैशारद्य कहा जाता है, ऐसा वाचस्पति मिश्र मानते हैं। विज्ञानभिक्षु वैशारद्यकालीन चित्त के परिणाम का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि चित्त की एकाग्रतारूप स्थिति का प्रवाह ही उस समय में होता है।<sup>2</sup> इस प्रकार जब चित्त पूर्ण—रूप से निर्मल हो जाता है तभी उसमें विवेक—ख्याति रूप विशिष्ट ज्ञान का उदय होता है। इसकी श्रेष्ठता को द्योतित करने हेतु विज्ञानभिक्षु लिखते हैं कि निर्विचारवैशारद्य के हो जाने पर स्वयं ही विवेकख्याति का उदय अथवा परमतत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है। इसके लिए प्रयत्नान्तर की अपेक्षा नहीं रहती।<sup>3</sup> क्योंकि इस निर्मल हुए चित्त में अविद्या का लेशमात्र भी अवशेष नहीं रहता, अतएव वहां उदित होने वाली प्रज्ञा को ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा जाना युक्तिसंगत ही है। विज्ञानभिक्षु का मत है कि जो ज्ञान चित्त की एकाग्रता दशा में होता है उसे ही ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा जाता है अन्य को नहीं, क्योंकि अन्य ज्ञानों के समय में अविद्या का कुछ न कुछ अंश में विद्यमान रहना अवश्यभावी है।

इसके द्वारा पदार्थ का साक्षात्कार किया जा सकता है, परन्तु वह आगम एवं अनुमान प्रमाण द्वारा सम्भव नहीं है। वे पदार्थ का सामान्य रूप से ही ज्ञान कराते हैं, जबकि यह उनके विशेष—रूप का ज्ञान कराती है।<sup>4</sup>

इस प्रज्ञा का उदय साधक को जिस अवस्था में होता है उसको मधुमती भूमि कहा जाता है। योगियों की चार श्रेणियों में से यह दूसरी अवस्था है। इस अवस्था वाले योगी को अत्यन्त सावधान रहने का उपदेश सूत्रकार देते हैं क्योंकि जिस फल की प्राप्ति साधक ने अब तक के कठिन परिश्रम से की है यदि वह विभिन्न देवताओं द्वारा प्रदत्त प्रलोभनों में पड़ गया तो व्यर्थ हो जाएगा और वह पुनः आवागमन के चक्र में फंस जायेगा, अतएव उसे चाहिए कि वह न तो प्रलोभनों में ही फंसे और न किसी प्रकार का घमण्ड ही करे।<sup>5</sup>

इस प्रकार जब साधक निरन्तर विवेकख्याति का ही अभ्यास करता रहता है और उसकी प्राप्ति के फलस्वरूप मिलने वाली और भी सिद्धियों यथा सर्वाभावाधिष्ठातृत्वादि की भी कामना नहीं करता, परन्तु उन्हें दोषयुक्त मानते हुए उनसे विरक्त रहता है, तो निरन्तर विवेकख्याति का ही प्रवाह साधक के चित्त में होता रहता है। यह अवस्था ही धर्ममेघ समाधि कहलाती है। विज्ञानभिक्षु इसे सम्प्रज्ञात समाधि की पराकाष्ठा मानते हैं, क्योंकि उस काल में योग के विघ्न—स्वरूप अविद्यादि अन्तरायों का पूर्णभाव हो जाता है।<sup>6</sup> सूत्रकार अविप्लवा 'विवेकख्याति' को ही हान का उपाय बताते हैं।<sup>7</sup> अविप्लव से तात्पर्य मिथ्या ज्ञान से रहित होने से है।<sup>8</sup> वाचस्पति मिश्र का मत है कि वह विवेक ख्याति जब समूल (वासना सहित) मिथ्याज्ञान को नष्ट कर देती है तब निर्विप्लवा होती है, वही हान का उपाय है। विज्ञानभिक्षु विवेकख्याति सूक्ष्म रूप में विद्यमान मिथ्याज्ञान को भी क्योंकि दग्धबीजभाव कर देती है, अतः क्रमशः चित्त की निवृत्ति द्वारा मोक्ष का उपाय है।<sup>9</sup>

विवेकख्याति साधक को प्रकृति एवं पुरुष में भेद दिखाकर उसे स्वरूपावस्थिति के योग्य बनाती है। इसके फलस्वरूप साधक को मैं नहीं हूँ तथा मेरा कुछ भी नहीं है इस प्रकार का अनुभव होता है ऐसा ईश्वरकृष्ण लिखते हैं।<sup>10</sup> मैं नहीं हूँ के द्वारा पुरुष की सत्ता नहीं है, ऐसा नहीं समझना चाहिये अपितु मैं वैसा नहीं हूँ जैसा कि अपने को अविद्या के कारण बन्धन की दशा में सोचता था, क्योंकि उस समय मैं अपने आपको पूर्ण रूप से भुला बैठा था तथा प्रकृति एवं उसके कार्यों को स्वयं आरोपित किये था। यह व्याख्या मजूमदार ने की है। ए.कं. लाड लिखते हैं कि भेदज्ञान के उदित होने पर वास्तविक आत्मा का निषेध न होकर उसके दोषपूर्ण तादात्म्य का ही निषेध होता है। सत्त्वज्ञान के उदित होने पर सांख्य दर्शन के अनुसार बाह्य जगत् का निषेध नहीं किया जाता, जबकि वेदान्त में उसका पूर्ण निषेध ही बताया गया है, यहां तो उस जगत् के प्रति जो मिथ्या तादात्म्यात्मक दृष्टिकोण था उसका ही निषेध होता है। यह सीमा रेखा अणिमा सेन ने इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए खींची है।

धर्ममेघ समाधि का निरन्तर अभ्यास करने के परिणामस्वरूप जब साधक को यह ज्ञान होता है कि विवेकख्याति भी सत्त्वगुणात्मक है तो उसके प्रति भी वैराग्य हो जाता है, इसे ही पर—वैराग्य कहा जाता है। वाचस्पति मिश्र लिखते हैं कि

ज्ञानप्रसादमात्र इस पर-वैराग्य के द्वारा साधक विवेकख्याति को भी रोक देता है।<sup>11</sup> विज्ञानभिक्षु का मत है कि जब साधक विवेकख्याति में भी अनात्मत्व का साक्षात्कार कर लेता है तब उसके प्रति भी वैराग्य हो जाता है जिसके पश्चात् इस अन्तिम सात्त्विक वृत्ति का भी निरोध हो जाने से सर्ववृत्तिनिरोध हो जाता है। योगसार-संग्रह में वह लिखते हैं कि ज्ञान के प्रति भी अलंबुद्धि हो जाने पर पर-वैराग्य की सिद्धि होती है, और उसके द्वारा असंप्रज्ञात योग। इस प्रकार क्रमशः जब समस्त वृत्तियों के निरोध के उपरान्त असम्प्रज्ञात समाधि में निरोध संस्कार भी क्षीण हो जाते हैं तब चित्तवृत्तियों सहित अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाता है और पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है यही मोक्ष कहा जाता है।<sup>12</sup> इस प्रकार भोग एवं मोक्ष रूप पुरुषार्थ के समाप्त हो जाने पर गुणों का जो परिणाम है वह रुक जाता है अर्थात् गुण उस पुरुष के लिए पुनः चित्तादि रूप में परिणत नहीं होते।<sup>13</sup> यहां यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि गुणों का तो स्वभाव है निरन्तर परिणत होते रहना, अतः जो यहां परिणाम के रुकने की बात कही गई है, वह विरूप परिणाम दृष्टि में रखते हुए कही गई है न कि सरूप परिणाम को, क्योंकि गुणों का सरूप परिणाम तो गुणों की साम्यावस्था में भी होता रहता है।

गुणों का जो विरूप-परिणाम है वह भी पूर्ण-रूप से समाप्त हो जाता हो, ऐसा नहीं है अपितु जिनके भोग एवं मोक्ष-रूप कार्यों को समाप्त कर दिया गया है। यह उन्हीं की दृष्टि में नष्ट होता है क्योंकि अन्य के प्रति इनका व्यापार पूर्ववत् ही चलता रहता है।

इस प्रकार गुणों का जो अपने कारण अव्यक्त में लय है, वही कैवल्य है। जब गुण पुनः पुरुष से संयुक्त होकर उसमें विकार उत्पन्न नहीं कर पाते तो पुरुष अपने स्वरूप में ठीक उसी प्रकार स्थित हो जाता है जिस प्रकार के जपाकुसुम के हट जाने पर स्फटिक-मणि।

### कैवल्य किसका होता है?

योग दर्शन में स्पष्ट रूप से दो प्रकार के कैवल्य की कल्पना की है।<sup>14</sup> वाचस्पति मिश्र इनमें से प्रथम प्रधान का मोक्ष<sup>15</sup> एवं द्वितीय को पुरुष का मोक्ष मानते हैं।<sup>16</sup>

सांख्य-कारिका में ईश्वरकृष्ण ने स्पष्ट किया है कि बन्धन एवं मोक्ष प्रकृति का ही होता है, पुरुष का नहीं। प्रकृति स्वयं ही धर्म, अधर्म, अज्ञान, वैराग्य एवं अवैराग्य, ऐश्वर्य तथा अनैश्वर्य नामक सात बुद्धि के भावों से अपने को बांधती है तथा ज्ञान रूप आठवें भाव के द्वारा स्वयं को मुक्त कर लेती है।

विज्ञानभिक्षु का मत है कि वास्तव में तो भोगाभाव ही पुरुषार्थ है, जो दुःख का अभाव-रूप पुरुषार्थ कहा गया है यह साक्षात् न होकर परम्परा से ही पुरुषार्थ कहा जा सकता है।<sup>17</sup> क्योंकि भोगाभाव रूप पुरुषार्थ तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक कि दुःख का पूर्णतया अभाव न हो जाए अर्थात् दुःख एवं उसके कारण के नष्ट होने पर ही समस्त भोगों का अभाव होता है। अतः दुःखाभाव परम्परया पुरुषार्थ माना जा सकता है।

बन्धन एवं मोक्ष पुरुष का होता है अथवा प्रकृति का इस विषय में योग के ग्रन्थों में विशेष-विचार नहीं किया गया है। राधाकृष्णन् का मत है कि मोक्ष का सम्बन्ध क्योंकि पुरुष के साथ नहीं है अतः उसका मोक्ष वास्तविक न होकर एक प्रतीति मात्र ही है।<sup>18</sup> लारसन भी पुरुष के बन्धन एवं मोक्ष को वास्तविक न मानते हुए बाह्य अर्थात् सांसारिक दृष्टि से ही इसकी कल्पना करते हैं। लाड का भी यही मत है कि व्यावहारिक दृष्टि से ही पुरुष का बन्धन एवं मोक्ष माना जा सकता है, परमार्थतः तो वह नित्य मुक्त ही है।<sup>19</sup>

### कैवल्य के प्रकार

योग दर्शन में दो प्रकार का मोक्ष माना गया है-प्रथम जीवन्मुक्ति तथा द्वितीय विदेह मुक्ति।

अणिमा सेन सांख्य-योग में वर्णित जीवन्मुक्ति को असम्प्रज्ञात समाधि की प्रारम्भिक स्थिति मानती हैं, उनके मत में साधक को इस दशा में विवेकख्याति के परिणामस्वरूप स्वरूपावस्थिति तो हो जाती है, परन्तु उसे अभी दृढ़ करना शेष रहता है, उसे अपने चित्त को पूर्ण-रूप से निवृत्तिक करना होता है यह जीवन्मुक्ति कितने काल तक रहती है इसका कोई नियम नहीं है क्योंकि जब तक साधक के प्रारब्ध कर्मों का क्षय नहीं होता तब तक उसे शरीर धारण किए रहना पड़ता है।

सांख्य-कारिका में इसकी उपमा देते हुए ईश्वरकृष्ण लिखते हैं कि जिस प्रकार कुम्हार के द्वारा चक्का चलाना बन्द कर दिए जाने पर भी पूर्व प्राप्त शक्ति से कुछ समय तक वह घूमता रहता है<sup>20</sup>, वेदान्त दर्शन में भी प्रारब्ध कर्मों के भोग के अनन्तर ही मुक्ति की कल्पना की गई है।<sup>21</sup> वेदान्तवादि शंकर आदि ने जीवन्मुक्ति की दशा में क्लेशवृत्ति की जो कल्पना की है, विज्ञानभिक्षु के मत में वह नितान्त भ्रामक है, क्योंकि जीवन्मुक्ति की दशा धर्ममेघ समाधि काल में मानी है।<sup>22</sup> उस समय मात्र विवेकख्याति का ही निरन्तर प्रवाह होता रहता है, अतः उस दशा में क्लेश की विद्यमानता स्वीकार करना उचित प्रतीत नहीं होता। स्वयं भाष्यकार व्यास ने स्पष्ट ही कहा है कि क्लेश एवं कर्म की निवृत्ति होने पर विद्वान् जीवित रहते हुए ही मुक्त हो जाता है।<sup>23</sup> वाचस्पति मिश्र लिखते हैं कि क्योंकि क्लेश एवं कर्म-वासनाएं ही जात्यादि का कारण होती हैं और बिना कारण के कार्य हो नहीं कसता। अतएव पुनः जन्म इनका नहीं होता। इस कारण इनका मोक्ष माना जा सकता है।

यद्यपि जीवन्मुक्त के व्यापार भी आपततः तो अन्य व्यक्तियों की भांति ही प्रतीत होते हैं परन्तु क्योंकि उसे विवेकज्ञान हो गया है अतः दोनों के समान रूप से कार्य करते हुए भी दृष्टिभेद का अन्तर है। इसी के परिणामस्वरूप अन्यो के कर्म कर्माशय को उत्पन्न करते हैं, जबकि जीवन्मुक्त के नहीं।

जीवन्मुक्त के प्रारब्धकर्मों का भोग द्वारा जब क्षय हो जाता है तब साधक शरीर त्याग कर विदेह कैवल्य का लाभ करता है। अणिमासेन लिखती हैं कि चित्त के अपने कारण में लीन हो जाने पर पुरुष सदा सर्वदा के लिए शरीर के बन्धन से मुक्त हो जाता है। यही विदेह मुक्ति है।

धर्ममेघ समाधि में जो विवेकख्याति रूप सात्त्विक-वृत्ति होती है उसके प्रति भी वैराग्य हो जाने को पर-वैराग्य कहा जाता है और इस पर-वैराग्य के फलस्वरूप साधक असम्प्रज्ञात समाधि का लाभ करता है। इस समाधि के द्वारा प्रारब्ध कर्मों का भी तत्काल ही क्षय हो जाता है अर्थात् उन्हें भोगने की आवश्यकता नहीं रहती ऐसा विज्ञानभिक्षु का मत है।<sup>24</sup> अन्य स्थल

पर वह लिखते हैं कि असम्प्रज्ञात समाधि के तत्काल पश्चात् ही मोक्ष का होना नियमित एवं निश्चित है जबकि उसके बिना कर्मों के फलभोग में समय लगने से मोक्ष में विलम्ब हो सकता है, अतः उनका मत है कि असम्प्रज्ञात समाधि के बिना भी कैवल्य की प्राप्ति जीवन्मुक्ति के पश्चात् हो सकती है, अन्तर मात्र समय का है।

वाचस्पति मिश्र ने असम्प्रज्ञात समाधि से तत्काल प्रारब्ध कर्मों का क्षय हो जाता है, ऐसा नहीं कहा है, न ही व्यास ने ही बिना कर्मों के फल भोग के अथवा असम्प्रज्ञात समाधि के अभाव में कैवल्य की कल्पना की है। विज्ञानभिक्षु का यह मत युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता कि प्रारब्ध कर्मों का उपभोग किए बिना अथवा असम्प्रज्ञात समाधि के बिना ही, विदेह कैवल्य को साधक प्राप्त कर सकता है।

अतः पर-वैराग्य के बाद आविर्भूत यह असम्प्रज्ञात समाधि तत्काल विदेह कैवल्य प्रदान करने में समर्थ हो सकती है।

योग-दर्शन में हमें कहीं भी असम्प्रज्ञात समाधि की दो अवस्थाएँ नहीं दिखती, क्योंकि असम्प्रज्ञात समाधि के तो आविर्भूत होते ही साधक विदेह कैवल्य का लाभ कर लेता है। अतः उन्होंने असम्प्रज्ञात समाधि की प्रारंभिक दशा कहा है उसे उसकी पूर्वावस्था कहा जाये तो ही अधिक उपयुक्त होगा।

### अन्य दर्शनों से समानता

योग दर्शन के अनुसार कैवल्य की दशा में पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, ऐसा कहा गया है।<sup>25</sup> आत्मा के स्वरूप के विषय में विभिन्न दर्शनों में परस्पर मतभेद होने के कारण मोक्षावस्था के अनुभव के विषय में भी परस्पर मतवैभिन्न्य है। विज्ञानभिक्षु ने योग-सार संग्रह में इसका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। सांख्य-दर्शन में त्रिविध-दुःख से अत्यन्त निवृत्ति को ही पुरुषार्थ कहा है और योग-दर्शन में भी दुःख को हेय कहा है, अतः दोनों में परस्पर अवरोध ही है। वेदान्ती जो जीवात्मा का परमात्मा में लय मानते हैं यह भी हमारे मत से विरोध नहीं रखते हैं, क्योंकि जीवों का जो ब्रह्म में लय कहा गया है वह उनकी उपाधियों का लय होने पर परमात्मा के अविभक्त रूप में रहना है, जो कि पुरुष की स्वरूपावस्थिति ही है<sup>26</sup> यह भी हमारे मत के अनुरूप ही है क्योंकि ये विशेष गुण ही उपाधि हैं जिनका उच्छेद योग-दर्शन को अभीष्ट ही है। नैयायिक ने तो स्पष्ट-रूप से दुःखनिवृत्ति को ही मोक्ष माना है। अतः उनके मत से अवरोध दिखाने की तो आवश्यकता ही नहीं है।<sup>27</sup> नवीन वेदान्तियों द्वारा जो मोक्षावस्था में आनन्द की स्थिति बताई गई है विज्ञानभिक्षु ने इसका घोर विरोध किया है। पुरुष के स्वरूप का वर्णन करते हुए उनके मत को यद्यपि स्पष्ट किया जा चुका है, फिर भी मोक्षावस्था में साधक आनन्द का अनुभव कर सकता है या नहीं इसका विवेचन कर लेना अनुपयुक्त न होगा क्योंकि श्रुतियों में दोनों मतों को पुष्ट करने वाले वाक्य उपलब्ध होते हैं। विज्ञानभिक्षु का मत है कि श्रुतियों एवं स्मृतियों में जहाँ मोक्ष दशा में परमानन्द की स्थिति बताई गई है वहाँ परममोक्ष का वर्णन न होकर गौण मोक्ष का ही वर्णन है। क्योंकि ब्रह्ममीमांसादि समस्त दर्शनों में कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं आया है साथ ही यह कल्पना श्रुति एवं स्मृति के भी विरुद्ध है, क्योंकि श्रुतियों एवं स्मृतियों में मोक्ष की दशा में सुख का निषेध ही उपलब्ध होता है।<sup>28</sup> जैसा असम्प्रज्ञात समाधि का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया जा चुका है कि विदेह एवं प्रकृतिलय जो संसार में शरीर धारण की अवस्था के बिना अपने उपास्य में लीन होकर रहते हैं वह यद्यपि कैवल्य के समान ही अवस्था है, परन्तु उसे कैवल्य नहीं कहा जा सकता, ऐसा स्वयं व्यास ने ही कहा है।<sup>29</sup> दोनों टीकाकार यद्यपि विदेह एवं प्रकृतिलयों के स्वरूप एवं उनके असम्प्रज्ञात योग के होने या न होने में मतभेद रखते हैं तथापि कोई भी उन्हें मुक्त नहीं मानता।

### सन्दर्भ सूची

1. द्रष्टुदृश्ययोः संयोगोः हेयहेतुः। -यो.सू. 2/17
2. तस्य हेतुरविद्या। -यो.सू. 2/24
3. तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्। -यो.सू. 2/25
4. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः। -यो.सू. 2/26
5. स्थितिप्रवाह एकाग्रताधारा चित्तस्य वैशारद्यमित्यर्थः। -यो.वा., पृ. 125
6. अन्वर्था च सा, सत्यमेव विभर्ति, न च तत्र विपर्यासंज्ञानगन्धोऽप्यस्तीति। -व्या.भा., पृ. 126
7. तस्माच्छ्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया सा प्रज्ञा विशेषार्थत्वादिति। -व्या.भा., पृ. 126
8. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात्। -यो.सू. 3/51
9. तस्य योगविघ्नाभावेन सर्वथा निरन्तरं विवेकख्यात्युदयाद् धर्ममैघनाम्नी सम्प्रज्ञातयोगस्य पराकाष्ठाभवतीत्यर्थः। -यो.वा., पृ. 455
10. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः। -यो.सू. 2/26
11. विप्लवो मिथ्याज्ञानं तद्रहिता। -त.वै., पृ. 232
12. ततो विवेकख्यातेः कारणात् मिथ्याज्ञानस्य सूक्ष्मरूपस्य दग्धबीजता प्राप्तिः, ततः च...चित्तनिवृत्त्यादिरूपमोक्षस्य पन्थाः। -यो.वा., पृ. 233
13. एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्। अविपर्ययाद् विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्। -सां. का. 64
14. ज्ञानप्रसादमात्रेण हि परेण वैराग्येण विवेकख्यातिमपि निरुणद्धीत्यर्थः। -त.वै., पृ. 12
15. क्रमेण चरमासंप्रज्ञातेऽशेषसंस्कारक्षयात् चित्तेन सह वृत्तीनामात्यन्तिकं निरोधे सत्यात्यन्तिकं मोक्षाख्यमिति। -यो.वा., पृ. 18
16. ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम्। -यो.सू. 4/32
17. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः स्वरूपप्रतिष्ठा वा चित्तिशक्तिरिति। -यो.सू. 3/34
18. योऽयं गुणानां कार्यकारणात्मकानां प्रतिसर्गस्तत्कैवल्यम्, यं कञ्चित्पुरुषं प्रति प्रधानस्य मोक्षः। -त.वै., पृ. 464
19. स्वरूपप्रतिष्ठा का पुरुषस्य मोक्ष इत्याह....। -त.वै., पृ. 464
20. अत्र न भुङ्क्ते इति वचनाद् भोगाभाव एव पुरुषार्थ इति स्मर्तव्यम्, दुःखाभावस्तु परम्परया पुरुषार्थ इति भावः। यो.वा., पृ. 380

21. Salvation in the Samkhya system is only phenomenal, Since bondage does not belong to purusa. Radhakrishnan S., I.P,2:311
22. Thus bondage and liberation of purusa are true only empirically. From a lighter point of view, Purusa is eternally free. Lad, A.K.C.I., I.P., 106
23. सम्यग्ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ । तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद् धृतशरीरः ॥ –सां.का., 67
24. भोगेन त्वितरे क्षपयित्वाय सम्पद्यते । –ब्रह्म.सू. 4/1/19
25. अस्यामवस्थायां जीवन्मुक्त इत्युच्यते । –यो.सा.सं., पृ. 17
26. क्लेशकर्मनिवृत्तौ जीवन्नेव विद्वान्विमुक्तो भवति । –व्या.भा., पृ. 455
27. असंप्रज्ञातयोगस्तु अखिलवासनाक्षयेण प्रारब्धातिक्रमद्वारा झटिति स्वेच्छया मोक्ष एवोपयुज्यते न तु नियमेनेति प्रागेवोक्तम् । –यो.सा.सं., पृ. 17
28. तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम् । –यो.सू. 1/3
29. समुद्रे नदीनामिव ब्रह्मणि जीवानामुपाधिलयेनाविभागस्यैव लयशब्दार्थत्वात् तस्य च पररूपेणाप्रतिष्ठत्व एव पर्यवसानात् । –यो.सा.सं., पृ. 66
30. नैयायिकास्त्वात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिर्माक्ष इतीच्छन्ति । तत्त्वस्मन्मतमेव । –यो.सा.सं., पृ. 66
31. श्रुतिस्मृतिन्यायविरोधाच्च । तत्र मोक्षे सुखप्रतिषेधिकाः श्रुतयः—विद्वान् हर्षशोकौ जहाति । (कठो.प. 2/12)
32. तथा प्रकृतिलयाः साधिकारे चेतसि प्रकृतिलीने कैवल्यपदमिवानुभवन्ति । –व्या.भा., पृ. 59